International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN :2581-9925, Impact Factor: 7.555, Volume 07, No. 01(II), January- March, 2025, pp. 125-128

महात्मा गाँधीः एक दार्शनिक अराजकतावादी

चेनाराम*

सार

महात्मा गाँधी मूल रूप में एक आध्यात्मिक सन्त थे, जिनका मूल उदेश्य धार्मिक जीवन व्यतीत करना था लेकिन गाँधीजी की धर्म सम्बन्धी धारणा लौकिक थी और वे मानवता की सेवा को ही वास्तविक धर्म मानते थे। महात्मा गाँधी के जीवनकाल की परिस्थितियाँ ऐसी थी कि उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करना पड़ा। स्वयं गाँधी जी के शब्दों में ''उस समय तक मैं धार्मिक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता था, जब तक कि मैं स्वयं को सम्पूर्ण मानवता के साथ एकीकृत न कर लेता और मैं यह उस समय तक नहीं कर सकता था, जब तक कि राजनीति में भाग नहीं लेता।'' महात्मा गाँधी की राजनीतिक विचारधारा का मूल आधार राजनीति के प्रति उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण ही है। गाँधी जी धर्म और राजनीति को पृथक करने के पक्ष में नहीं थे। उनके शब्दों में '' मैं यदि राजनीति में भाग लेता हूँ तो इसका कारण राजनीति हमें एक सर्पिणी की भांति जकड़े हुए है और हम चाहे कितना भी प्रयास क्यों न करें, उससे बाहर नहीं निकल सकते। मैं सर्पिणी से जूझना चाहता हूँ। मैं इस राजनीति में धर्म को प्रविष्ट करने का प्रयास करता हूँ।''

शब्दकोशः *अराजकतावदी, राजनीतिक विचारधारा, आदर्शवाद, आध्यात्मिक दृष्टिकोण, व्यक्तिवाद, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, हिंसामूलक संगठन, विकेन्द्रीकरण, व्यवस्थापिका, कार्यकारिणी, न्यायपालिका, सर्वाधिकारवादी।*

प्रस्तावना

राज्य के सम्बंध में गाँधीजी के विचार – समाज में राज्य के स्थान के सम्बंध में विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओं में अत्यधिक मतभेद रहा है। आदर्शवाद जैसी कुछ विचाराधाराओं के द्वारा राज्य को साध्य के रूप में स्वीकारा गया है, किन्तु गाँधीजी राज्य को अधिक महत्व देने को तैयार नहीं है, उनके अनुसार व्यक्ति साध्य तथा राज्य एक साधन मात्र है। गाँधीजी राज्य को सामाजिक उत्थान और जनकल्याण का एक साधन मात्र मानते थे। राज्य के सम्बंध में गाँधीजी के विचार अराजकतावादी दार्शनिक क्रोपाटकिन और टाल्सटॉय के विचारों से प्रभावित है। गाँधीजी ने नैतिक, ऐतिहासिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण के आधार पर राज्य की कटु आलोचना की।

गाँधीजी राज्य को एक ऐसी हिंसक संस्था मानते है जिनका कार्य निर्धन वर्ग का शोषण करना है। राज्य के द्वारा नैतिकता का हनन किया जाता है। अतः या तो राज्य को समाप्त हो जाना चाहिए अन्यथा उनके व्यक्ति रूपी पुस्तक का अंतिम अध्याय रहना चाहिए। स्वयं गाँधीजी के शब्दों में, ''राज्य केन्द्रित और संगठित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है व्यक्ति एक सचेतन आत्मवान प्राणी है, किन्तु राज्य एक ऐसा आत्महीन

* सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय बाँगड़ महाविद्यालय, डीडवाना, राजस्थान।

यंत्र है जिसे हिंसा से पृथक नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसकी उत्पति ही हिंसा से ही हुई है।'' राज्य की उत्पति मनुष्य के लिए हुई है न की मनुष्य की राज्य के लिए। गाँधीजी द्वारा राज्य की सत्ता के विरोध के कारण इस प्रकार है :–

- दार्शनिक आधार पर राज्य का विरोध करते हुए गाँधीजी का विचार है कि राज्य व्यक्ति के नैतिक विकास का मार्ग प्रशस्त नहीं करता। व्यक्ति का नैतिक विकास उसकी आंतरिक इच्छाओं और कामनाओं पर निर्भर है, लेकिन राज्य शक्ति पर आधारित होने के कारण व्यक्ति के केवल बाहरी कार्यों को ही प्रभावित कर सकता है। राज्य अनैतिक है क्योंकि वह सब कार्य अपनी इच्छा से नहीं वरन् दण्ड के भय और कानून की शक्ति से कराना चाहता है।
- महात्मा गाँधी अहिंसा में विश्वास रखते थे और राज्य को एक हिंसा मूलक संगठन मानते थे। इस कारण भी उन्होंने राज्य का विरोध किया।
- गाँधीजी के अनुसार राज्य का बढ़ता हुआ कार्यक्षेत्र व्यक्ति में स्वावलम्बन और आत्मविश्वास के गुणों को विकसित नहीं होने देता और व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध हो जाता है। उन्होंने कहा की, '' मैं राज्य की शक्तियों को बड़े भय तथा शंका की दृष्टि से देखता हूँ क्योंकि ऊपर से देखने पर शोषण को कम करते हुए राज्य एक अच्छा कार्य करता हुआ मालूम पड़ता है, किन्तु व्यक्ति के व्यक्तित्व का विनाश कर, वह मनुष्य जाति को सबसे अधिक हानि पहुँचाता है। हम ऐसे अनेक उदाहरण जानते है जहाँ मनुष्य ने संरक्षक के रूप में कार्य किया है किन्तु ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जहाँ राज्य का अस्तित्व वास्तव में दरिद्रों के कल्याण के लिए रहा है।''

राज्य के प्रति अपने इसी दृष्टिकोण के कारण गाँधीजी राज्य के कार्यक्षेत्र को कम से कम करने के पक्ष में थे। सिद्धान्त रूप में राज्य के अस्तित्व के विरूद्ध होने पर भी गाँधीजी वर्तमान परिस्थितियों में राज्य को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि वर्तमान समय में मानव जीवन इतना पूर्ण नहीं है कि वह स्वयं संचालित हो सके इसलिए समाज में राज्य और राजनीतिक शक्ति की आवश्यकता है, लेकिन राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम होना चाहिए।

राज्य को एक आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकार करते हुए गाँधीजी ने राज्य के प्रभाव और शक्ति को कम से कम करने का प्रयत्न किया, जिससे राज्य सत्ता के होते हुए भी व्यक्ति वास्तविक रूप में स्वतंत्रता प्राप्त कर सके।

इस सम्बंध में गाँधीजी द्वारा तीन सुझाव दिये गये है जो इस प्रकार है :–

- **सत्ता का विकेन्द्रीकरण –** महात्मा गाँधी ने राजनीतिक क्षेत्र में सत्ता के विकेन्द्रीकरण का सुझाव दिया, उनका मानना था कि ग्राम पंचायतों को अपने गांवो का प्रबंध और प्रशासन करने के सब अधिकार दे दिये जाएं। सत्ता का केन्द्रीकरण सदैव हानिकारक होता है। इसमें थोड़े से व्यक्ति सत्ता पर एकाधिकार कर लेते है। इसे रोकने का एकमात्र उपाय विकेन्द्रीकरण हो सकता है। उन्होंने लिखा है ''मेरे ग्राम स्वराज्य का आदर्श यह है कि प्रत्येक ग्राम एक पूर्ण गणराज्य हो। अपनी आवश्यक वस्तुओं के लिए यह अपने पड़ोसियों पर निर्भर न रहे। इस प्रकार प्रत्येक गांव का पहला काम होगा खाने के लिए अन्न और कपड़ो के लिए रूई की फसल उत्पन्न करना, गांव की अपनी नाट्यशाला, सार्वजनिक भवन और पाठ्शाला भी होना चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा अंतिम कक्षा तक अनिवार्य होगी। यथासंभव प्रत्येक कार्य सहकारिता के आधार पर किया जायेगा। गांव का शासन पांच व्यक्तियों द्वारा संचालित होगा। पंचायत ही गांव की व्यवस्थापिका सभा, कार्यकारिणी, न्यायपालिका सभी कुछ होगी''।
- **राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम –** महात्मा गाँधी हैनरी डी. थोरू के इस विचार से सहमत थे कि ''सर्वोत्तम सरकार वह है जो सबसे कम शासन करती है।'' गाँधीजी का मानना था की राज्य का कार्यक्षेत्र न्यूनतम होना चाहिए, उसके द्वारा व्यक्ति के जीवन में कम से कम हस्तक्षेप किया जाना चाहिए।

उनका कहना था कि ''स्वराज्य का अर्थ यह है कि व्यक्ति को सरकार के नियंत्रण से स्वतंत्र होने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिए, चाहे वह सरकार विदेशी हो और चाहे राष्ट्रीय।''

- **राज्य के प्रभुत्व के सिद्वान्त का खण्डन –** महात्मा गाँधी हीगल या अन्य सर्वाधिकारवादियों की इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे कि व्यक्ति राज्य की प्रत्येक आज्ञा माने। उनके द्वारा राज्य के प्रभुत्व के सिद्धान्त का खण्डन किया, वे राज्य को साधन मात्र मानते थे। गाँधीजी ने कहा है, ''राजभक्ति का कोई अपरिवर्तनशील सिद्धान्त नहीं है वह तो एक पारस्परिक आदान–प्रदान है।'' इसलिए राज्य जनता की भक्ति का हकदार तभी हो सकता है जबकि वह जनता के कल्याण की दिशा में आगे बढे और जनशक्ति पर आधारित हो। जैसे ही राज्य अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाता है, जनता पर अन्याय और अत्याचार करने लगता है और ऐसे कानूनों का निर्माण करना जो व्यक्ति के अन्तःकरण के विरूद्ध हो, तो वह जनता की भक्ति प्राप्त करने का अधिकार खो देता है।
- **गाँधीजी का आदर्श समाज या राज्य –** गाँधीजी द्वारा भी प्लेटो की भाँति दो आदर्शों का वर्णन किया है प्रथम पूर्ण आदर्श और द्वितीय, उप आदर्श। उनकी पूर्ण आदर्श सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य के लिए कोई स्थान नहीं है। गाँधीजी यथार्थवादी थे उन्होंने इस बात को स्वीकार किया है कि मानव स्वभाव की वर्तमान स्थिति में पूर्ण आदर्श सम्भव नहीं है इसलिए उप आदर्श व्यवस्था को अपनाना चाहिए जो इस प्रकार है :–
  - **अंहिसात्मक समाज –** गाँधीजी के इस आदर्श राज्य में राज्य संस्था का अस्तित्व रहेगा और पुलिस, जेल, सेना तथा न्यायालय की बाध्यकारी सत्ताएं भी रहेगी। लेकिन इन सत्ताओं का प्रयोग जनता को आंतकित करने के लिए नहीं बल्कि उनकी सेवा करने के लिए किया जायेगा।
  - **शासन का रूप लोकतांत्रिक –** गाँधीजी के आदर्श समाज में शासन का रूप पूर्णतया लोकतांत्रिक होगा। जनता शासन के संचालन में मतदान द्वारा भाग लेगी। शासन सत्ता सीमित होगी और जनता के प्रति उत्तरदायी होगी।
  - **विकेन्द्रीकृत सत्ता –** गाँधीजी सम्पूर्ण भारत में प्राचीन ढंग के स्वतंत्र और स्वावलम्बी ग्राम समाजों की स्थापना करना चाहते थे, जिसका आधार ग्राम पंचायतें होगी। ग्राम पंचायतों का प्रत्यक्ष निर्वाचन हो जबकि ग्राम के ऊपर जो प्रशासनिक ईकाइयां यथा प्रादेशिक सरकार राष्ट्रीय सरकार आदि के विधानमण्डलों का चुनाव अप्रत्यक्ष प्रणाली से हो जिससे सत्ता का केन्द्र ग्राम पंचायतें बनी रहे।
  - **आर्थिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण –** गाँधीजी के आदर्श राज्य में विशाल तथा केन्द्रीकृत उद्योग खत्म करके उनके स्थान पर कुटीर उद्योग धंधे चलाने की बात कही गई है। हर गांव अपनी आवश्यकता की वस्तुऐं स्वयं उत्पन्न करेगा और प्रत्येक व्यक्ति अपने उत्पादन के साधनों का स्वयं स्वामी होगा।
  - **नागरिक अधिकारों पर आधारित –** आदर्श समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार व्यक्त करने और समुदायों के निर्माण की स्वतंत्रता होगी इस समाज में जाति, धर्म, भाषा, वर्ण और लिंग आदि भेदभाव के बिना सभी व्यक्तियों को समान सामाजिक और राजनीतिक अधिकार प्राप्त होगें।
  - **ट्रस्टीशिप व्यवस्था :–** गाँधीजी का मानना था कि वर्तमान समय में आर्थिक विषमता का कारण धनी वर्ग द्वारा आवश्यकता से अधिक धन तथा वस्तुओं को संग्रह करना है। आर्थिक विषमता को समाप्त करने के लिए गाँधीजी ने ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त दिया जिनके अनुसार व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक वस्तुओं का स्वामी न मानकर, समाज की धरोहर के रूप में मान्यता दे। निजी सम्पति का वास्तविक स्वामी समाज है न कि व्यक्ति।

- **वर्ण व्यवस्था :–** गाँधीजी का आदर्श समाज प्राचीनकाल की भाँति वर्ण व्यवस्था पर आधारित होगा जिसमें चार वर्ण ब्रह्माण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र अपनी वंश परम्परा के आधार पर अपना कार्य करेगा। सभी व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार होगा। कोई भी कार्य छोटा नहीं माना जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति के लिए श्रम अनिवार्य है। समाज में अस्पृश्यता को कलंक मानते हुए समाज में इसके लिए कोई स्थान नहीं होने की बात गाँधीजी द्वारा कही गई।

गाँधीजी के आदर्श समाज में गोवध, मद्य निषेध की बात कही गई इसके साथ ही धर्मनिरपेक्ष समाज की आवश्यकता पर बल दिया गया है। राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान होंगे और सभी धर्म के लोगों को समान सुविधाएं प्राप्त होगी। गाँधीजी के आदर्श समाज में निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जायेगी। राज्य द्वारा सभी गांवों में बुनियादी शिक्षा दी जायेगी। गाँधीजी ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' की धारणा में विश्वास करते थे, इस कारण वो अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्तिप्रियता के समर्थक थे। उनका आदर्श राज्य अन्य राज्यों के साथ मैत्री, सद्भावना और सहयोग के सम्बंध स्थापित करेगा।

साराशं

गाँधीजी के राज्य सम्बंधी विचारों को ''सैद्धान्तिक दृष्टि से अराजकतावादी तथा व्यवहार में व्यक्तिवादी'' कहा जा सकता है। लेकिन गाँधीजी न तो क्रोपाटकिन और बाकुनिन की तरह हिंसा के आधार पर राज्य को समाप्त करने के पक्ष में थे और न ही उनका व्यक्तिवाद पाश्चात्य व्यक्तिवाद की तरह पूंजीवादी अर्थव्यवस्था को स्थापित करता है। गाँधीजी की राजनीतिक विचारधारा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्रभावित थी तथा वह ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते थे, जिसका संचालन धर्म (सत्य और अहिंसा) के आधार पर हो। गाँधीजी व्यक्तिगत कार्यों एवं राजनीतिक कार्यों को पृथक नहीं मानते थे। वो नैतिकता को सामाजिक जीवन के साथ–साथ राजनीति में भी लागू करना चाहते थे। उनका मानना था कि राजनीति के दोषों को दूर करने का एकमात्र उपाय नैतिकता ही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ. पुखराज गर्ग – प्रतिनिधि भारतीय राजनीतिक विचारक, साहित्य भवन पब्लिकेशनस , आगरा।
2. प्रकाश नारायण नाराणी – गाँधी, नेहरू और टैगोर।
3. नरेन्द्र दुबे – ट्रस्टीशिप : सिद्धान्त और व्यवहार सर्व सेवा संघ प्रकाशन वाराणसी।
4. योगेश कुमार शर्मा, भारतीय राजनीतिक चिन्तक, कनिष्का पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
5. उपेन्द्र प्रसाद – गाँधीवादी समाजवाद, नमन प्रकाशन, दिल्ली।
6. आर.के. प्रभु एवं यू.आर. राव – महात्मा गाँधी के विचार, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।
7. राजरतन एवं शोभिका, डॉ. शारदा – महात्मा गाँधी की राजनीतिक अवधारणायें, कलिंगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
8. वी.पी. वर्मा – आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तक, आगरा।
9. गोपीनाथ धवन – दी पोलिटिकल फिलोसोफी ऑफ महात्मा गाँधी, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
10. राममूर्ति सिंह – महात्मा गाँधी और विश्वशान्ति, साहित्य विकुँज प्रकाशन, इलाहबाद।
11. के.एस. भारथी– द सोशल फिलासफी ऑफ महात्मा गाँधीजी : कान्सेप्ट पब्लिशर्स नई दिल्ली।
12. एस.एल. नागौरी, प्राचीन भारतीय चिंतन, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर।

❖◆❖